विक्रम संवाद

पाक्षिक आलेख सेवा/नि:शुल्क वितरण के लिए

सम्पादक

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ

बिड़ला भवन, देवास रोड, उज्जैन-456010

फोन : 0734-2521499, 0755-2660407

Email : mvspujjain@gmail.com
vikramadityashodhpeeth@gmail.com

Web : www.mvspujjain.com

इस अंक में

पृष्ठ क्र. 1-2

पुराणों में भारत की भौगोलिक सीमाएँ
बजरंगलाल अत्रि

पृष्ठ क्र. 3-4

दक्षिण के राजवंशों की सांस्कृतिक उपलब्धि
विजय परिहार

पृष्ठ क्र. 5-6

मौर्य साम्राज्य और वृहत्तर भारत
रवीन्द्र नारायण भारती

पृष्ठ क्र. 7

पुरोवाक् सरस्वती सभ्यता और भारत
मिथिलेश यादव

पुराणों में भारत की भौगोलिक सीमाएँ

बजरंगलाल अत्रि

भारत के अनेकों आधुनिक इतिहासकारों में यह भ्रम फैला हुआ है कि ब्रिटिश सरकार ने ही भारत को एक राष्ट्र के रूप में एकीकरण किया है तथा भारत एक निर्माणाधीन राष्ट्र है। किन्तु पुराणों और अन्य संस्कृत ग्रन्थों में प्राचीनकाल से ही भारत राष्ट्र और इसकी राष्ट्रीयता का वर्णन किया गया है। विभिन्न पुराणों में न केवल भारतवर्ष नाम की व्याख्या ही की गई है बल्कि इसकी अस्मिता, सांस्कृतिक प्रभाव और भौगोलिक सीमाओं का भी वर्णन किया गया है। विभिन्न पुराणों में भुवनकोश अर्थात् प्राचीन विश्व की भौगोलिक स्थिति का वर्णन करते हुए भारतवर्ष की भोगौलिक सीमा, इसकी सांस्कृतिक विरासत, विभिन्न भाषाओं, परम्पराओं, प्रान्तों वाले विशाल भूभाग का सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सामुदायिक राष्ट्र के रूप में वर्णन किया गया है। इस शोधलेख में पौराणिक प्रमाणों के आधार पर भारत के प्राचीन इतिहास, इसके नामकरण, भौगोलिक स्थिति तथा भारतीय संस्कृति की प्राचीनता का वर्णन किया गया है। पुराणों में ही इस देश का नाम भारतवर्ष पहली बार प्राप्त होता है। पुराणों के भौगोलिक विवरणों के अनुसार भारतवर्ष जम्बूद्वीप के इलावृत्तवर्ष में स्थित मेरूपर्वत अर्थात् पामीर नाट के दक्षिण में बसा है और आज भी भारत अफगानिस्तान स्थित पामीर पर्वतमाला के दक्षिण में स्थित है। पुराणों में भारतवर्ष के जिन पर्वतों, नदियों, सरोवरों, तीर्थों तथा सागरों का वर्णन किया गया है, वे आज भी भारतीय उप–महाद्वीप में वर्तमान है। आधुनिक यूरोपीय विद्वानों और उनके शिष्य भारतीय इतिहासकारों ने पुराणों को पंडितों की गप्म बताया और प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन में पुराणों एवं अन्य संस्कृत ग्रन्थों को ऐतिहासिक शोधकार्य के योग्य नहीं माना।

आधुनिक काल में भारतीय इतिहास का लेखन ब्रिटिश औपनिवेशिक शासकों द्वारा लिखा गया था। यह वह काल था जब विश्व का लगभग प्रत्येक देश यूरोपीय जातियों के अधीन था। ऐसी परिस्थितियों में यूरोपीय विद्वानों की मान्यताओं, अनुमानों और आधे–अधूरे अध्ययन के आधार पर प्राप्त निष्पत्तियों पर आधारित भारतीय इतिहास का निर्माण किया गया था। इस कार्य ठोस तथ्यों और प्रमाणों को या तो जाना नहीं गया अथवा जानबूझ उपेक्षित कर दिया गया। अधिकांश यूरोपीय इतिहासकार सैनिक अधिकारी या प्रशासक थे। जिनका उद्देश्य इतिहास अध्ययन में अपनी मनमानी स्थापित कर भारत में औपनिवेशिक शासन को दृढ़ करना था। जिस प्रकार से रोम, यूनान, चीन आदि देशों का इतिहास प्राचीन रोमन, यूनानी या चीनी साहित्य और परम्पराओं के मूल रूप में अध्ययन के बिना लिखना बेमानी है उसी प्रकार प्राचीन भारत का इतिहास वेद और संस्कृत भाषा के अध्ययन के बिना लिखना ऐतिहासिक तुक्के बाजी ही है। यूरोपीय इतिहासकारों ने अपने अल्पज्ञान या अहंमन्यता के कारण कई भारतीय ऐतिहासिक प्रमाणों को न केवल उपेक्षित कर दिया बल्कि उन्हें ब्राह्मणों की गप्पें बताकर हजारों वर्षों से संरक्षित प्राचीन भारत के इतिहास, साहित्य, विज्ञान के विशाल ग्रन्थों को अप्रमाणित घोषित करने का कार्य भी किया। पुराणों में भारतीय राजवंशों का आनुक्रमिक वर्णन हमें सत्य नहीं लगता है और मिश्र के पत्थरों पर चित्र लिपि में उत्कीर्ण प्राचीन राजवंश सत्य लगते हैं। भारत वर्ष नामक राष्ट्र का नाम, नामकरण, भौगोलिक सीमाएँ और संस्कृति वेद, पुराण, ज्योतिष ग्रन्थों में हजारों वर्षों से विस्तार से वर्णित किया गया उसे प्रामाणित नहीं माना जा रहा है। इतिहासकारों ने रामायण और महाभारत को नवीं शताब्दी ईसापूर्व में रचित तथा इन्हें साहित्यिक कल्पनाएँ बताया और उन्हें हम मान रहे हैं। ऋग्वेद में भारत जन का नाम आता है जोकि बाद में भारतवर्ष या भारत राष्ट्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पुराणों में इस देश के नाम की व्युत्पत्ति भी की गयी है। कुछ पुराणों के अनुसार इस देश का भारतवर्ष नाम ऋषभदेव के पुत्र चक्रवर्ती सम्राट भरत के नाम पर पड़ा तो कुछ पुराणों के अनुसार दुष्यंत

पुत्र भरत के नाम पर। निरुक्त वचनों का उद्धरण देते हुए विभिन्न पुराणों में कहा गया है कि प्रजाओं की सृष्टि करने और उसका भरण–पोषण करने के कारण मनु को ही भरत कहा गया और उन्हीं के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। सृष्टि के आदि में स्वयंभू मनु के वंश में ऋषभदेव पुत्र चक्रवर्ती भरत नौ द्वीपों सहित अजनाभवर्ष अर्थात् बृहत्तर भारतवर्ष के सम्राट थे। अतः उसके नाम पर अजनाभवर्ष का नाम भारतवर्ष पड़ा। बाद में चन्द्रवंश में दुष्यंतपुत्र भरत भी उसी के समान चक्र वर्ती और प्रसिद्ध सम्राट हुए और उस समय भरतवंशियों के राज्य भारतवर्ष के नौ खण्डों में से एक सागर संवर्त कुमारीखण्ड में फैले हुए थे। इस नौंवे खण्ड का नाम भरतखण्ड पड़ा। भारतवर्ष की पहचान स्वयंभू मनु, ऋषभदेव पुत्र भरत और दुष्यंतपुत्र भरत सभी के नामों से होती है। इसके साथ ही भारत को मनु, पृथु इक्ष्वाकु, ययाति, अम्बरीश, नहूश, मुचुकुन्द, कुबे, उशीनर, ऐल पुरूरवा, कुशिक, गाभि, सोम, दिलीप, भगीरथ, ऋषभदेव आदि विभिन्न राज्यों के प्रतापी राजाओं का प्रिय देश कहा गया है। भारतवर्ष की स्थिति और सीमा के बारे में विभिन्न पुराणों में बहुत ही स्पष्ट अर्थ के साथ निम्नलिखित श्लोक मिलते हैं।

उत्तर यत्समुद्रस्य हिमादेश्चौवदक्षिणम्।
वर्षतद् भारतनामभारती यत्र सन्ति।।

(ब्रह्मपुराण, विष्णुपुराण, द्वितीय अंश, भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग पर्व, गरुड़ पुराण, प्रथमभाग)

लिंगपुराण, प्रथम खण्ड, वायुपुराण, के अनुसार समुद्र के उत्तर में और हिमालय के दक्षिण में जो वर्ष अर्थात् क्षेत्र है उसका नाम भारतवर्ष है और इसकी सन्तान अर्थात् इसके निवासी भारती कहलाते हैं। यह भी कहा गया है कि भारतवर्ष मेरू पर्वत के दक्षिण में स्थित है। पुराणों के भौगोलिक विवरणों के अनुसार भारतवर्ष जम्बूद्वीप के इलावृत्त वर्ष में स्थित मेरु पर्वत के दक्षिण में बसा है कूर्मपुराण, पूर्वविभाग, मत्स्यपुराण, वामनपुराण,, विष्णुपुराण, में प्राचीन भारत के ब्राहमण, बौद्ध और जैन वाङमय में मेरू, सुमेरू, महामेरू, मेरूववर्ष आदि पर्वतों का वर्णन पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है।

मेरू पर्वत की महानता के कारण ही भारत में मेरू नामान्त के अनेकों नगर बसाये गए। जैसे अजयमेरू से अजमेर, वृद्ध या बढ़मेरू से बाढ़मेर आदि। पाली भाषा में मेरू, सुमेरु को सुनेरू और नेरू कहा जाता था। इसके अनुक्रम में बीकानेर, बांकनेर, चम्पानेर आदि नगरों के नाम बने हैं। सिद्धान्त गणित के ग्रन्थ सूर्य सिद्धान्त में मेरू पर्वत को भूगोल मध्य तथा जम्बूनद या जम्बूद्वीप में स्थित बताया गया है (सूर्यसिद्धान्त, भूगोलाध्याय)। आधुनिक विद्वानों, अध्येताओं, भूगर्भशास्त्रियों, भाषा विज्ञानियों और इतिहासकारों ने पामीर पर्वतमाला को पुराणों में वर्णित मेरू शब्द का अपभ्रंष बताया है। अफगानिस्तान की पश्तो भाषा इंडो–यूरोपीयन वर्ग की है और हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की तरह पश्तो एवं संस्कृत में पर्याप्त समानता है। आधुनिक पामीर शब्द पश्तो भाषा का है जो कि वस्तुतः संस्कृत शब्दपाद मेरू या उपमेरू का अपभ्रंश है, जैसे इसी प्रकार पाकिस्तान की पर्वतशिखर तिरीच मीर अर्थात् त्रिक मेरू, कश्मीर अर्थात कश्यप मेरू, पामीर क्षेत्र का प्राचीन स्थान मर्व, मार्गियाना या मोरू भी मेरू शब्द के अपभ्रंश हैं। पामीर पर्वत अफगानिस्तान के वाखन (संस्कृत शब्द वक्षुन् अर्थात् वक्षु नदी का क्षेत्र) जिले में स्थित है जहा विश्व के सर्वाधिक ऊँचाई वाले पांच पर्वत, चीन के तिएन शान (स्वर्गीय पर्वत), मध्य एशिया के कुन लुन अफगानिस्तान के हिन्दुकुश, तिब्बत का काराकोरम और भारत का हिमालय पर्वत मिलते हैं। वेदों और पुराणों में वर्णित मेरूवर्ष की नदियों इक्षुमती, वक्षु और चक्षु आधुनिक पामीर क्षेत्र में अभी भी बहती हैं।

पुराणों के अनुसार भारत वर्ष की दक्षिण से उत्तर लम्बाई एक हजार योजन और इसका विस्तार नौहजार योजन है। यह पूर्व से पश्चिम खिंचे हुए ऊर्ध्वाकार धनुष की तरह तीर्थकाकार रूप में विस्तीर्ण है। इसका क्षेत्रफल नौ हजार योजन वर्णित किया गया है। पुराणों के अनुसार भारत वर्ष में इन्द्रद्वीप, कसेरुमान, ताम्रपर्णी, गभस्तिमान, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व तथा वरूण नौ द्वीप सम्मिलित हैं। हालांकि आधुनिक काल में इन द्वीपों की पहचान एक कठिन काम है परन्तु प्राचीन साहित्य के आधार पर इनकी स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता हैद्य। भरतखंड के ऊंचे नौ खंडों को मान्यता दी गई है। इसके पूर्व में किरात (थिनी) और पश्चिम में यवन (यूनानी) लोग निवास करते हैं। मूल रूप से पुराणों के भारतवर्ष के उत्तर में हिमवत प्रदेश आधुनिक तिब्बत से लेकर दक्षिण में ताम्रपर्णी या श्रीलंका के अनुसार एवं पश्चिम में ईरान (कश्यप सागरध्कैस्पियन सागर) से लेकर वरुणद्वीप अर्थात आधुनिक बोर्नियो तक विस्तृत था। पुराणों में पर्वतों को कुलपर्वत कहकर उनकी पवित्रता और उनके प्रति श्रद्धा भाव प्रदर्शित किया गया है। इन पर्वतों के अतिरिक्त पुराणों में अनेकों बड़े–छोटे पर्वतों का प्रोचनात्मक और प्रशंसात्मक वर्णन किया गया है जिनमें पुराणकारों का भारत देश और मातृभूमि के प्रति आदर और समर्पण झलकता है। इन पर्वतों से प्राप्त वनस्पतियों, औषधियों, धातुओं तथा अन्य खनिज पदार्थों पर भारतीयों का जीवन आधारित था अतः पौराणिक साहित्य में इन महान और जीवनदायी पर्वतों की वन्दना की गई है।

दक्षिण के राजवंशों की सांस्कृतिक उपलब्धि

विजय परिहार

भारत की सांस्कृतिक अभ्युदय की दृष्टि से दक्षिण भारत का विशेष योगदान रहा है। उसकी ऐतिहासिक परम्परा को सातवाहनों और शुंगों से स्थापित किया जा सकता है। लगभग दो सौ वर्ष ई.पू. से लेकर दूसरी शती ई. तक के चार सौ वर्षों के सांस्कृतिक इतिहास के निर्माण में जिन विभिन्न राजवंशों का योगदान रहा, उसमें दक्षिण के सातवाहनों और शुंगों का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके शासनकाल में साहित्य, संस्कृति और कला के क्षेत्र में जो अभूतपूर्व उन्नति हुई, उसका उल्लेख यथा–स्थान कर दिया गया है। सातवाहनों के ही समकालीन कलिंग के चेदिवंशीय प्रसिद्ध खारवेल (लगभग 200 ई.पू.) ने दक्षिण की सांस्कृतिक परम्परा को उजागर किया। यह कलिंग चक्रवर्ती स्वयंमेव अनेक विषयों का विद्वान् था और उसी प्रकार उसके प्रताप का आतंक पूर्व में मगध तक छाया हुआ था। दक्षिण की सांस्कृतिक गरिमा को बढ़ाने वाले राजवंशों, में गंगवंश, पल्लववंश, चोलवंश और चालुक्यवंश का नाम उल्लेखनीय है। गंगों की कीर्ति का अमर स्मारक कोणार्क का सूर्य मन्दिर अपनी धार्मिक महत्ता और कला की भव्यता को आज भी द्योतित कर रहा है। पल्लवों की संस्कृतप्रियता, धार्मिक उदारता के अनेक प्रमाण आज भी जीवित है। अनेक भव्य एवं विशाल मन्दिर और सितनवासल की गुफाएँ उनके धर्मसमन्वित कलानुराग के साक्षी हैं। इसी प्रकार चोलों और चालुक्यों की धार्मिक सहिष्णुता, विद्यानुरागिता और कलाप्रियता के बहुसंख्यक प्रमाण उनके यश को आज भी सुरक्षित बनाये हुए हैं। चोलों के शासन में मन्दिरों और मूर्तियों का निर्माण विशेष रूप से हुआ। चालुक्यों की कला–कीर्ति एलीफेण्टा और बादामी की भव्य गुफाओं के रूप में जीवित हैं। उहोंने धार्मिक समन्वय के साथ–साथ दक्षिण में साहित्य के निर्माण में भी विशेष योगदान किया। वे स्वयं विद्यावन्त थे और विद्वानों के प्रति निष्ठावान् भी। उनके शासनकाल में कन्नड़ और संस्कृत–साहित्य का नव निर्माण हुआ। कलिंग का चेदिवंश अपनी ऐतिहासिक महत्ता के लिए प्रसिद्ध है। प्राचीन साहित्य में कलिंग का उल्लेख प्राच्य जनपदों में हुआ है। पाणिनि के अनुसार वह एकराज जनपद था। महाभारत और पुराणों से लेकर दण्डी के दशकुमाचरित और राजशेखर की काव्यमीमांसा आदि विभिन्न ग्रन्थों में इस यशस्वी जनपद का उल्लेख हुआ है। कलिंग जनपद मौर्यों से पूर्व नन्द साम्राज्य का अंग था, किन्तु मौर्ययुग में यह स्वतन्त्र हो गया था। प्लिनी ने कलिग की शक्तिशाली सेना का वर्णन किया है। अशोक के अभिलेखों से विदित होता है कि अशोक ने कलिंग में भयंकर रक्तपात किया था, जिससे पश्चात्तापवश वह बौद्ध बन गया था। अशोक के समय में कलिंग की राजधानी तोसली थी, जो कि आज भी जीवित है। मौर्य सम्राट् अशोक के निधन के बाद कलिंग पर जिस चेदि नामक ब्राह्मण राजवंश की प्रतिष्ठा हुई थी, खारवेल उसी कुल का था। बाद में वह ब्राह्मण से जैन हो गया था। उसने उत्तर–दक्षिण के मौर्य तथा सातवाहन साम्राज्यों को आतंकितकर बहुत बड़े साम्राज्य का निर्माण किया था। दो बार उसने मगध को विजितकर कलिंग की कालिमा का बदला चुकाया था। वह बड़ा प्रतापी तथा बलवान राजा था। उसके अभिलेखों में उसे कलिगाधिपति तथा कलिंगचक्रवर्ती कहा गया है उसकी राजधानी कलिंगनगर थी। अभिलेखों के अनुसार एक तूफान में कलिंगनगर के द्वार, प्रासाद, भवन और उपवन, सब नष्ट हो गये थे जिनका खारबेल ने पुनर्निर्माण कर एक नहर तथा भव्य मन्दिर का निर्माण करके नगर की शोभा को बढ़ाया था। खारबेल का एक महत्वपूर्ण हाथीगुम्फा (भुवनेश्वर, पुरी जिला के निकट) अभिलेख उपलब्ध है, जिसमें खारबेल को चेदिकुल का तीसरा शासक बताया गया है (एपि. ई. 20 जनवरी, 1930, पृ. 71, जे. बी. ओ. आर. एस. 1918 (4) पृ. 364 आदि) इस अभिलेख के अध्येता आधुनिक इतिहासकार विद्वानों का अभिमत है कि बारबेल यवनराज (योनराज) डेमिट्रियस (दिमित) का समकालीन था और हाथीगुम्फा तथा नानाघाट के अभिलेखों में पर्याप्त एकता होने के कारण वह सातवाहन सम्राट् सातकर्णि प्रथम (172–162 ई.पू.) के आसपास हुआ, जिससे उसका स्थितिकाल 200 ई.पू. के आरम्भ में सिद्ध होता है। उसके इस महत्वपूर्ण अभिलेख में लिखा है कि गणित, व्यवहारशास्त्र (कानून)

और अर्थशास्त्र का ज्ञान प्राप्तकर वह 24 वर्ष की अवस्था में सिंहासन पर बैठा था। कलिंग का राजवंश क्षीण हो गया था, किन्तु उसका अस्तित्व बना हुआ था। चौथी कलिंग में यह एक छोटे–से राज्य के रूप में वर्तमान था। जिसका कि गली साम्राज्य में विलय हो गया था। पाँचवीं शती ई. में मध्य कलिंग पर पितृभक्तवत्स और दक्षिण कलिंग पर माठर तथा वासिष्ठवंश के राजा राज्य करते थे। कलिंग पर चेदिवंश के बाद जिन प्रभावशाली राजवंशों का उदय हुआ उनमें गगवंश का नाम प्रमुख है। ईसा पूर्व दूसरी शती में चेदिराज खारवेल ने कलिंग की कीर्ति को उच्च–स्तर पर पहुँचाया। उसके बाद मध्ययुगीन राजवंशों में हर्षवर्द्धन का भी कुछ समय तक वहाँ शासन बना रहा। उसके समय भारत में आये चीनी यात्री हवैन–त्साँग ने भी अपने यात्रा–वृत्तान्त में कलिंग की स्थित पर प्रकाश डाला है। कलिंग पर गंगवंश का शासन 6ठीं श. ई. लगभग 13वीं श. ई. तक बना रहा। गगवंशीय शासकों में नरसिंहदेव प्रथम (1238–1264 ई.) का नाम प्रमुख है। वह बड़ा धर्मप्राण, कलानुरागी तथा विद्याप्रेमी शासक था।

कोणार्क के प्रसिद्ध सूर्व मन्दिर के रूप में उसकी कीर्ति आज भी जीवित है। गगों की राजधानी कलिंगनगर थी, जिसका समीकरण वर्तमान कलिंग–पत्तनम् से किया जाता है। कलिग के गंगवंशीय शासकों के समय भारतीय धर्म, साहित्य तथा शासन का द्वीपान्तरों तक प्रचार–प्रसार हुआ। उनमें बरमा और मलय का नाम प्रमुख है। मलय–साहित्य में कलिंग की प्रशस्त चर्चाएँ गंगों के सांस्कृतिक प्रसार की सूचक है। कोणार्क उडीसा प्रदेश की पुरी जिले जगन्नाथपुरी से उत्तर–पूर्व दिशा में समुद्र तट पर अवस्थित है। कोणार्क सूर्य मन्दिर के लिए प्रसिद्ध है। मन्दिर की रचना रथ के रूप में की गयी है, जिसमें 9 फुट 8 इंच व्यास के चौबीस विशाल पहिए बनाये गये हैं और जिन्हें सात घोड़ों से खींचते हुए दिखाया गया है। यह रथ संसार–रूप चक्र का प्रतीक है और इसके द्वारा सृष्टि की नित्य संचरण क्रिया का भाव व्यक्त किया गया है। इसका निर्माण गंग राजा नरसिंहदेव प्रधान ने किया था। यह विशाल मन्दिर 865 गुणा 540 चौकोर प्राकार से घिरा हुआ है। पल्लवों के मूल इतिहास के सम्बन्ध में विद्वान् एकमत नहीं हैं। विभिन्न विद्वानों की इस सम्बन्ध में अलग–अलग धारणाएँ हैं। प्रायः सभी इतिहासकार यह मानते हैं कि पल्लवों का मूल दक्षिण भारत के ब्राह्मणवंश से था, किन्तु बाद में युद्धजीवी होने के कारण उन्हें क्षत्रिय मान लिया गया। तृतीय–चौथी शती ई. प्राकृत भाषा के बीच में तीन ताम्रपत्रों से ज्ञात होता है कि पल्लव राजवंश के आदि पुरुष का नाम बप्पादेव था, जिन्होंने दक्षिण भारत में कांची (कांचीवरम्) और धान्यकटक (धरणीकोटा) में दो राजधानियों की स्थापना की थी, पल्लव साम्राज्य की स्थापित मूर्तियाँ (गोपालन–इतिहास) ऑफ दी पल्लरवाज ऑफ काँची, पृ. 32। बप्पदेव के बाद उनके पुत्र शिवस्कन्दवर्मन और तदनन्तर विष्णुगोप उत्तराधिकारी बने। विष्णुगोप ने सम्राट सीगुप्त को त्याग दिया था। इन तीन पल्लव शासकों का समय तीसरी से छठी शती ई. के बीच था। छठी शती के अन्त में सिंहविष्णु नामक एक प्रतावी सामन्त ने नया पल्लववंश प्रतिष्ठित किया। सिंहविष्णु के बाद उसका पुत्र महेन्द्रवर्मन् प्रथम गद्दी पर बैठा। यह बड़ा पराक्रमी, कला–प्रेमी महेत्यानुरागी और निर्माण कार्यों में अभिरुचि रखता था, शेव था और उसने ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के भव्य मन्दिरों का निर्माण कराके अपनी धार्मिक गरिमा का चिरस्थायी बनाया। चित्रकला तथा संगीत में उसकी विशेष अभिरुचि थी। उसे मत्तविलास प्रहसन नामक एक व्यंग्यात्मक प्रहसन का भी रचयिता माना जाता है।

7वीं शती ई. के द्वितीय चरण से लेकर लगभग 895 ई. के बीच पल्लववंश के प्रसिद्ध शासकों में क्रमशः नरसिंहवर्मन् प्रथम, परमेश्वरवर्मन प्रथम, नरसिंहवर्मन द्वितीय, नन्दिवर्मन और अपराजितवर्मन् का नाम उल्लेखनीय है। पल्लव राजवंश का लगभग छह सौ वर्षों का इतिहास उसकी साहित्यिक अभिरुचियों, कलानुरागिता और धार्मिक सहिष्णुता के कारण अपना गौरवशाली स्थान रखता है। उसका शासनकाल वस्तुतः दक्षिण भारत के साहित्य, धर्म तथा कला का भव्य इतिहास है। अपनी संस्कृतज्ञता और विद्वंनिष्ठा के रूप में उन्होंने शुंग–सातवाहनों की परम्परा को पुनःजीवित किया। संस्कृत भाषा के प्रचारार्थ और तत्कालीन संस्कृतज्ञ विद्वानों के लिए उन्होंने जो कार्य किये, वे इतिहास में अमर हैं। पल्लवों की राजधानी काँची संस्कृत–शिक्षा का भारतप्रसिद्ध केन्द्र था। संस्कृत के विशाल वाङ्मय में काँची का व्यापक उल्लेख पल्लवों की संस्कृतनिष्ठा का ही परिचायक है। पल्लवों के संस्कृतानुराग के प्रमाण उनके उपलब्ध अभिलेख हैं, जो कि प्रायः सभी संस्कृत में है। त्रावणकोर निवासी किरातार्जुनीय महाकाव्य के रचयिता महाकवि भारवि पल्लव सिंह विष्णु के सभा विद्वान् थे। दिङ्नाग, मयूरशर्मन दण्डी और भानुदत्त आदि विद्वानों के ग्रन्थों से विदित होता है कि वे अपनी ज्ञान–पिपासा की तृप्ति के लिए काँची आये थे।

व्यंग्यात्मक प्रहसन मत्तविलास के रचयिता महेन्द्रवर्मन् की संस्कृत–अभिज्ञता का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। आधुनिक इतिहासकार विद्वानों का अभिमत है कि भास तथा शूद्रक के नाटकों को अभिनय योग्य बनाने के लिए नरसिंहवर्मन् के समय उनका संक्षिप्तीकरण किया गया था। सभी पल्लव शासक धार्मिक उदार एवं सहिष्णु थे। यद्यपि वे अधिकतर शैव थे, किन्तु वैष्णवों तथा अन्य धर्मानुयायियों के साथ उनके सम्मानित सम्बन्ध बने रहे और उन्होंने प्रोत्साहित किया। सन्त अय्यर और तिरुमगै या तिरुज्ञान तथा सम्बन्दर जैसे शैव–वैष्णव सन्त और पेरुन्देवनार जैसे तमिल साहित्यकार उन्हीं के शासनकाल में हुए। उनके द्वारा निर्मित शिव एवं विष्णु के भव्य मन्दिर न केवल उनकी धार्मिक रुचि के परिणाम हैं, अपितु उनके द्वारा कला का भी व्यापक रूप से संरक्षण हुआ। सिंहविष्णु के पुत्र महेन्द्रवर्मन् प्रथम ने ब्रह्मा, विष्णु और शिव के भव्य मन्दिरों की स्थापना की। उसके द्वारा स्थापित मन्दिरों में त्रिचनापल्ली, महेन्द्रवाडि और डलवानूर के मन्दिरों का नाम उल्लेखनीय है, जो कि स्थापत्य तथा मूर्तिकला के संगम हैं।

मौर्य साम्राज्य और वृहत्तर भारत

रवीन्द्र नारायण भारती

ई पू. 200 के कालावधि में मौर्य साम्राज्य जितना बड़ा किसी अन्य साम्राज्य का सारस नहीं मिलता, इस दौरान मध्य एशिया और भारत के बीच एक घनिष्ट सम्बन्ध व्यापक सम्पर्क बना। भारत के पूर्वी और मध्य भागों में और दक्कन में, मौर्य के बाद गुंग, कण्व और सातवाहन जैसे कई स्थानीय शासक आये। मौर्यों के बाद मध्य एशिया के कई राजवंश उत्तर–पश्चिमी भारत में आये और शासन किये। उनमें से, कुषाण सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए। ई.पू. 200 के आस–पास, आक्रमणों की एक श्रृंखला शुरू हुई। हिन्दू कुश को सबसे पहले पार करने वाले यूनानी थे। जिन्होंने उत्तर अफगानिस्तान के क्षेत्र में ओक्सस नदी के दक्षिण में स्थित बैक्ट्रिया या बहलिका पर शासन किया। एक के बाद एक आक्रमणकारी आ ही गये, उनमें से कुछ ने तो एक ही समय में समानान्तर शासन किया। आक्रमणों का एक महत्वपूर्ण कारण था सेल्यूकस साम्राज्य की कमजोरी। इस साम्राज्य की स्थापना बैक्ट्रिया और ईरान से सटे हुए पार्थिया नामक इलाके में हुई थी। सीथियन जनजातियों के बढ़ते दबाव के कारण, उत्तरवर्ती यूनानी शासक इस क्षेत्र में सत्ता बनाए रखने में असमर्थ थे। चीनी दीवार के निर्माण के साथ, सिथियन को चीनी सीमा से वापस धकेल दिया गया था। इसलिए उन्होंने पड़ोसी यूनानियों और पार्थियों की तरफ ध्यान दिया। सिथीयन कबीलों द्वारा अकेले जाने के बाद, बैक्ट्रियन यूनानी, भारत पर आक्रमण के लिए मजबूर हो गये।

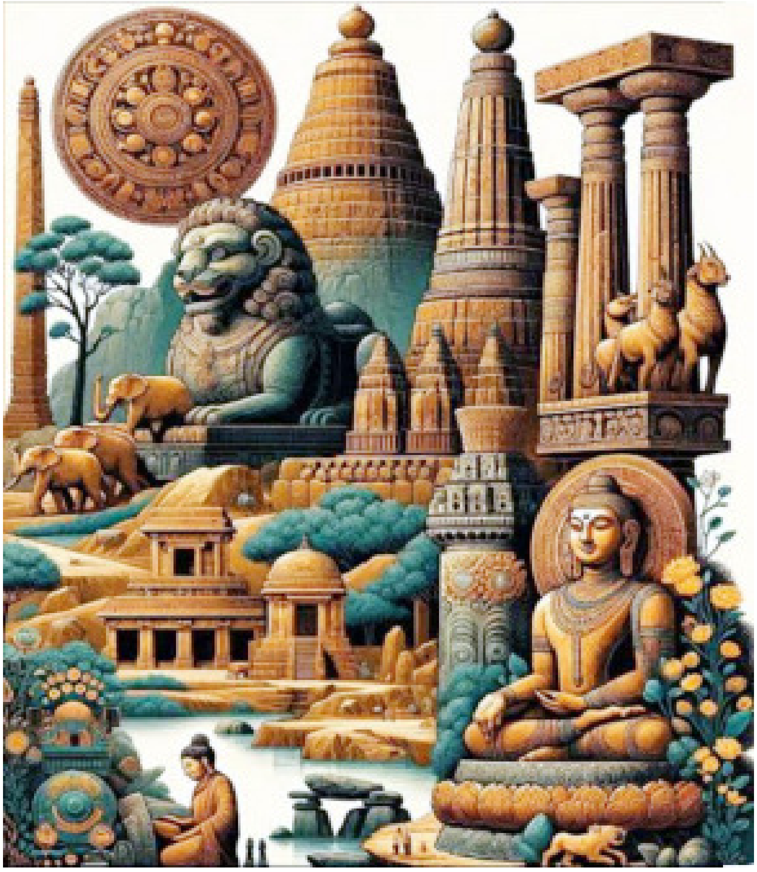

इस काल में अशोक के जो उत्तराधिकारी थे वे इतने कमजोर हो गये थे कि विदेशी आक्रमणों की इस लहर को रोकने में सक्षम नहीं हुए। भारत पर सबसे पहले आक्रमण करने वाले यूनानी थे। जिन्हें इण्डो–यूनानी या इण्डो–वैक्ट्रियाई कहा जाता था। ई.पू. दूसरी शताब्दी की शुरुआत में, इण्डो–यूनानी लोगों ने उतार–पश्चिमी भारत के बहुत बड़े हिस्से पर कब्जा कर लिया था जो सिकंदर की विजय से भी बहुत बड़ा क्षेत्र था। कहा जाता है कि वे अयोध्या और पाटलिपुत्र तक आ गये थे। यूनानी भारत में एकजुट होकर शासन स्थापित करने में विफल रहे। दो यूनानी एकसाथ समानान्तर काल में उत्तर–पश्चिमी भारत पर शासन किया। सबसे भारत–यूनानी शासक मेनाण्डर (ई.पू. 165–45) थे, जिन्हें मिलिण्डा के रूप में राजधानी सकल आधुनिक सियालका रूप में उनहोंने गंगा–यमुना दोआब पर आक्रमण किया। उनके अधीन सकल और मथुरा कई महानगर थे। वे अपने शासन में विभिन्न प्रकार के सिक्कों के प्रसार के लिए जाने बाते हैं। नागसेना, जिन्हें नागार्जुन के रूप में जाना जाता है। मेनाण्डर ने नागसेना से बौद्ध धर्म से जुड़े कई सारे सवाल पूछे। इन सवालों और नागसेना के उत्तरों को एक पुस्तक मिलिन्दपान्हों या मिलिन्द के प्रश्न के रूप में दर्ज किया गया है। यूनानियों द्वारा जारी किए गए सिक्कों की बड़ी संख्या के कारण भारत के इतिहास में इण्डो–यूनानी शासन महत्वपूर्ण है। भारत में इण्डो–यूनानी शासक ऐसे पहले शासक के जिनके सिक्कों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इसे किस शासक द्वारा जारी किया गया। पुराने पंच–चिह्नित सिक्कों को इस तरह किसी राजवंश से जोड़कर देख पाना सम्भव नहीं है। भारत में सोने के सिक्के जारी करने वाले सबसे पहले शासक इण्डो–यूनानी ही थे, कुषाणों के समय में इन सिक्कों की संख्या में वृद्धि हुई। भारत के उत्तर–पश्चिमी सीमा में यूनानी शासन ने हेलेनिस्टिक कला की शुरुआत की, किन्तु इसे विशुद्ध यूनानी नहीं माना जा सकता। यह सिकन्दर की मृत्यु के बाद, गैर–यूनानी लोगों के साथ यूनानी सम्पर्क के परिणाम से विकसित हुई कला थी। गान्धार कला इसका सबसे अच्छा उदाहरण था। पुननियों के

बाद शक आए। शक या सिथियन ने बैक्ट्रिया और भारत दोनों में यूनानी रस्तियों को नष्ट कर दिया और यूनानियों की तुलना में भारत के बहुत बड़े हिस्से पर कब्जा किया।

भारत और अफगानिस्तान के विभिन्न हिस्सों में शकों के शक्ति केन्द्र की पाँच शाखाएँ थीं। शकों की एक शाखा अफगानिस्तान मंड थी, दूसरी पंजाब में जिसकी राजधानी स्वशिला थी, और तीसरी मथुरा में, जहाँ उन्होंने दो शताब्दियों तक शासन किया, चौथी शाखा ने पश्चिमी भारत पर अपना कब्जा जमाया, जहाँ शकों ने चौदहवीं शताब्दी तक शासन किया, पाँचवीं शाखा ने ऊपरी दक्कन में अपनी शक्ति स्थापित की। शकों को भारत के शासकों और लोगों से किसी भी प्रतिरोध का सामना नहीं करना पड़ा। 57–58 के आस–पास हम उज्जैन के सम्राट विक्रमादित्य के बारे में सुनते हैं, जो प्रभावी ढंग से शाहों के खिलाफ लड़े और अपने शासनकाल में उन्हें बाहर खदेड़ दिया। शकों पर उनकी विजय के बाद, ई.पू. 57 के से विक्रम सम्वत् माना जाता है। इसके बाद विक्रमादित्य एक प्रतिष्ठित उपाधि बन गया। जिसने भी सफलता हासिल की और पराक्रम दिखाया उसने यह उपाधि ग्रहण की, जैसे महान शक्ति प्रदर्शन के लिए रोमन सम्राट सीजर की उपाधि अपना लेते थे। इस परम्परा का परिणाम यह हुआ कि भारतीय इतिहास में चौदह विक्रमादित्य हुए।

गुप्त वंश के चन्द्रगुप्त द्वितीय उनमें सबसे प्रसिद्ध थे। यह उपाधि बारहवीं शताब्दी तक भारतीय राजाओं के लिए द्वितीय उन हो, यह विशेषकर भारत के पश्चिमी भाग और पश्चिमी डेक्कन में प्रचलित थे। युग को, उन्हीं के नाम शकों ने देश के विभिन्न हिस्सों में अपना शासन स्थापित किया। शक लगभग चार शताब्दियों तक राज करते रहे। वे गुजरात के ६ाारात बासर से काफी लाभान्वित हुए और कई चाँदी के सिक्के जारी किए। भारत में सबसे सन् शक शासक रुद्रदमन प्रथम (सन् 130–50) थे। उन्होंने न केवल सिन्ध पर शासन किए, बल्कि गुजरात, कोंकण, नर्मदा घाटी, मालवा और काठियावाड़ के एक महत्वपूर्ण हिस्सों पर भी शासन किया। वे काठियावाड़ के सूखे हुए क्षेत्र में सुदर्शन झील, जो मौर्यों के समय से सिंचाई के लिए लम्बे समय तक इस्तेमाल होती थी, उसकी भी मरम्मत करवाई। रुद्रदमन संस्कृत में काफी रुचि रखते थे। हालाँकि उनके पूर्वज मध्य एशिया के थे, उन्होंने पहला लम्बा अभिलेख शुद्ध संस्कृत में जारी किया था। इसके पहले के सभी प्राचीन अभिलेख प्राकृत में थे, जिसे अशोक ने राज्य की भाषा बनायी थी। उत्तर–पश्चिम भारत में शकों के वर्चस्व के बाद पार्थियन आये, कई प्राचीन भारतीय संस्कृत ग्रन्थों में, दोनों लोगों का उल्लेख एक साथ शक–पहलवों के रूप में किया गया है। वास्तव में, दोनों ने एक ही समय में भारत पर शासन किया था। मूलतः पार्थियन या पहलव ईरान में रहते थे, जहाँ से वे भारत आये थे। उन्होंने पहली शताब्दी में उत्तरी–पश्चिमी भारत के एक छोटे से हिस्से पर कब्जा किया जो यूनानी और शकों की तुलना में बहुत छोटा था पार्थियनों के सबसे प्रसिद्ध राजा गोण्डोफरनेस थे, जिनके काल में सन्त थॉमस ईसाई धर्म के प्रसार के लिए भारत आये थे। समय के साथ, पार्थियन भी, शकों की तरह, भारतीय राजनीति और समाज के अभिन्न अंग बन गये।

पर्थिदन के बाद कुषाण आये, इन्हें योची या टोचेरियन कहा जाता था। टोचेरियन, सीधियान से एक थे। ये चीन के पड़ोस में उत्तर–मध्य एशिया के मैदान में रहने वाले खानाबदोश लोग थे। कुषाणों ने सबसे पहले बैक्ट्रिया या उत्तर अफगानिस्तान पर कब्जा किया और वहाँ से ककों विस्थापित कर दिया। धीरे–धीरे वे काबुल घाटी की तरफ बढ़े और हिन्दू कुरा को पार कर गान्धार पर कब्जा कर लिया और इन क्षेत्रों में यूनानी और पार्थियन के शासन कोणिन–भिन्न कर दिया। अन्ततः उन्होंने सिन्धु नदी के निचले हिस्से और गंगा घालायन अधिकतर हिस्सों में अपना शासन स्थापित कर लिया। उनका साम्राज्य ओक्सस से गंगा तक, मध्य एशिया के खोरासन से बिहार के पाटलिपुत्र एक फैला था।

मध्य एशिया के पूर्व सोवियत गणराज्य का बड़ा हिस्सा और सुपुत्र निस्तान और लगभग पूरा पाकिस्तान और उत्तर भारत को उन्होंने अपने अधीन किया। इसी कारण, भारत में कुषाण साम्राज्य को कभी–कभी मध्य एशिया का साम्राज्य बताया। इस साम्राज्य ने भिन्न लोगों और संस्कृतियों के आपसी सम्पर्क और समागम के लिए एक अनूठा अवसर प्रदान किया। इस प्रक्रिया ने एक नए प्रकार की संस्कृति को हम दिया, जो आज के नौ देशों में फैली हुई है। कुषाण के दो उत्तरवर्ती राजवंश थे। पहले राजवंश की स्थापना कडफिज समूह के प्रमुख द्वारा की गई और इसका शासन सन् 50 से लेकर अट्ठाईस वर्षों तक चला। इस दौरान दो राजाओं ने शासन किया। पहले राजा कडफिज प्रथम ने हिन्दू कुश के दक्षिण में सिक्के जारी किए, इन्होंने रोमन सिक्कों का नकल करते हुए ताम्बे के सिक्के बनवाये।

दूसरे राजा कहफित द्वितीय ने बड़ी संख्या में सोने के सिक्के जारी किए और सिन्धु के पूरब में अपने राज्य का विस्तार किया। कडफिज के बाद कनिष्क राजवंश आया। इन राजाओं ने ऊपरी भारत और निचली सिन्धु घाटी में कुषाणों की शक्ति को बढ़ाया और फैलाया। प्राचीन कुषाण राजाओं ने गुप्त काल से भी अधिक शुद्धता वाले सोने के कई सिक्के जारी किये। हालाँकि, कुषाणों के सोने के सिक्के मुख्य रूप से सिन्धु के पश्चिम में पाये जाते हैं। जबकि उनके अभिलेख केवल उत्तर–पश्चिम भारत और सिन्ध में ही नहीं, बल्कि मथुरा, श्रवस्ती, कौशाम्बी और वाराणसी में भी पाये जाते हैं। इस तरह, गंगा–यमुना दोआब के अलावा उन्होंने मध्य गंगा घाटी के बड़े हिस्सों में भी अपना अधिकार स्थापित किया था। मधुरा से प्राप्त कुषाण सिक्के, अभिलेख, निर्माण और मूर्तिकला के टुकड़े दर्शाते हैं कि यह भारत में उनकी दूसरी राजधानी थी। पहली राजधानी पुरुषपुर या पेशावर थी, जहाँ कनिष्क ने एक मठ और विशाल स्तूप बनवाया था।

पुस्तक चर्चा

पुरोवाक् सरस्वती सभ्यता और भारत

मिथिलेश यादव

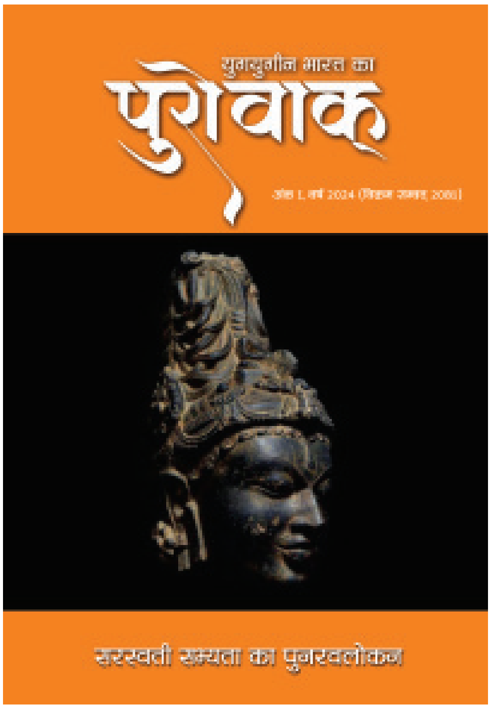
युगयुगीन भारत का
पुरोवाक्
अंक 1, वर्ष 2024 (विक्रम सम्वत् 2081)
सरस्वती सभ्यता का पुनरवलोकन

भारतीय संस्कृति और इतिहास की जड़ों में गहराई से जुड़ी सरस्वती सभ्यता, अपने समय की एक अद्वितीय और समृद्ध सभ्यता थी। यह केवल एक भौगोलिक परिघटना नहीं, बल्कि हमारी सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक संरचना की नींव है। यह सभ्यता वैदिक काल से जुड़ी मानी जाती है, जिसके साहित्य, दर्शन, विज्ञान और कला ने मानवता को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया। सरस्वती नदी, जिसे ऋग्वेद में बार–बार उल्लेखित किया गया है, किसी समय उत्तर–पश्चिम भारत के जीवन का आधार थी। इसके किनारे विकसित हुई सभ्यता का योगदान केवल भौतिक समृद्धि तक सीमित नहीं था, बल्कि इसका प्रभाव मानसिक और आध्यात्मिक विकास पर भी था। लेकिन समय के साथ, यह नदी विलुप्त हो गयी और इसके साथ ही इस सभ्यता का अस्तित्व भी इतिहास की धुंध में खो गया। आधुनिक अनुसंधान और पुरातात्विक खोजों ने सरस्वती नदी और उसकी सभ्यता की कहानियों को फिर से जीवंत किया है। सैटेलाइट चित्रण, भूवैज्ञानिक अध्ययन और ऐतिहासिक साक्ष्यों ने यह सिद्ध किया है कि सरस्वती एक वास्तविक नदी थी, जो कभी सिंधु और घग्गर–हकरा क्षेत्र में प्रवाहित होती थी। इसके किनारे बसे नगर, जैसे राखीगढ़ी, कालीबंगन और लोथल, इसकी उन्नत शहरी योजना, व्यापार और जल प्रबंधन प्रणालियों का प्रमाण देते हैं।

पिछले लगभग सौ साल से हमें सिंधु और वैदिक सभ्यता के बीच अंतर सिखाया–पढ़ाया जाता रहा है, लेकिन अब इस विषय पर पुनर्विचार करने का समय आ गया है। नये पुरातात्विक शोधों और वैदिक साहित्य के गहन अध्ययन के प्रकाश में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि हमें इन सभ्यताओं के बीच समानताओं पर अधिक ध्यान देना चाहिए। सूर्य पूजा समेत ऐसी बहुत–सी बातें हैं, जो वैदिक साहित्य व पुरातत्व में विशेषकर सिंधु–सरस्वती सभ्यता क्षेत्र में, एक जैसी हैं। सभ्यता के आरंभिक काल से ही दुनियाभर में सूर्य की पूजा हो रही है। प्राचीन विश्व के लगभग सभी समाज सूर्य को किसी न किसी रूप में पूजते थे और भारतीय उपमहाद्वीप, विशेषकर सिंधु–सरस्वती सभ्यता का क्षेत्र, इसका अपवाद नहीं है। यहाँ प्राचीन काल से ही विभिन्न नामों और चिह्नों के साथ विभिन्न उद्देश्यों के लिए सूर्य की पूजा की जाती रही है। वैदिक साहित्य में सूर्य के प्रति श्रद्धा के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। बाद के साहित्य में उन्हें आदित्य, भानु, सवित्र, पूषन, रवि, मार्तण्ड, मित्र, भास्कर, प्रभाकर और विवस्वान जैसे कई नामों से जाना जाता रहा है। भारतीय सभ्यता की जननी सरस्वती नदी है और ये हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग है। विश्व के सबसे प्राचीन और महत्वपूर्ण ग्रंथ वेदों का संकलन ऋषियों ने सरस्वती नदी के किनारे ही किया है। विश्व की प्राचीन नदी घाटी सभ्यताओं में से एक सरस्वती नदी के तट पर बसी सभ्यता को हड़प्पा सभ्यता या सिंधु–सरस्वती सभ्यता कहा जाता है। आज, जब हम अपने अतीत को फिर से खोजनें की प्रक्रिया में हैं, सरस्वती सभ्यता हमें यह सिखाती है कि स्थिरता, रचनात्मकता और सामूहिक उत्थान से सभ्यता कैसे विकसित होती है। इसके साथ ही यह हमें हमारी प्राचीन धरोहर को संरक्षित करने की प्रेरणा भी देती है।

प्राचीन सरस्वती सभ्यता को केंद्र में रखकर प्रकाशित वीर भारत न्यास का रिसर्च जर्नल पुरोवाक् का उद्देश्य भारतीय प्राचीन विद्या, ज्ञान परंपरा और सांस्कृतिक धरोहर को पुनः समझना और पुनर्व्याख्यायित करना है। इसका उद्देश्य भारतीय ज्ञान–विज्ञान, साहित्य, दर्शन, इतिहास और सांस्कृतिक मूल्यों को संरक्षित करना और नए दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत करना है। इस तरह की पहल भारत के गौरवशाली अतीत को वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों से जोड़ने में सहायक होती है। भारतीय जन और विश्व के विद्वत् मानस में लुप्त वैदिक सरस्वती के विषय में अनेक प्रश्न और जिज्ञासा हमेशा से ही रही हैं। वैदिक काल में जिस नदी को ‘सर्वाधिक गतिशील’, ‘उर्वराशक्ति की प्रेरिका’, ‘नदीतमा’ के रूप में हिमालय से निकलकर ‘आसमुद्रात’ बहने का उल्लेख है, जिसके तट पर मनु, पांचाल, इक्ष्वाकु, चायमान और संवरण आदि राजाओं ने अपने राज्य, नगर एवं यज्ञ–परम्पराओं की वृद्धि की तथा सारस्वत सभ्यता का उन्नयन किया, जिसके तट पर अनेक

भोपाल में 3 जनवरी 2025 को आयोजित राष्ट्रीय बाल विज्ञान कांग्रेस में माननीय मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव द्वारा वीर भारत न्यास का रिसर्च जर्नल पुरोवाक् का लोकार्पण किया गया।

जैसे विशाल नगर प्रतिष्ठित हुए, वह सरस्वती नदी कब, क्यों, कैसे लुप्त हो गई? क्या सरस्वती हिमालय से निकलकर सिंधु–सागर में मिलती थी? क्या प्रयाग में सचमुच गंगा, यमुना, सरस्वती का संगम हुआ? इसका प्राचीन मार्ग कौन–सा है? इसके नष्ट होने का स्थल विनशन कहाँ है? क्या सिंधु नदी ही प्राचीन सरस्वती है? क्या वर्तमान घग्घर ही प्राचीन सरस्वती है? क्या यह आज अंतः सलिला के रूप में विद्यमान है? सरस्वती घाटी की सभ्यता–संस्कृति का स्वरूप क्या था?

इन यक्ष–प्रश्नों के आलोक में देश के प्रमुख पुरातत्ववेत्ताओं, इतिहासकारों, भूगर्भशास्त्रियों, साहित्यवेत्ताओं और वैज्ञानिकों के एक दल ने दिनांक 17 नवम्बर से 18 दिसम्बर, 1985 तक तटवर्ती स्थलों की सर्वेक्षण–यात्रा की। सिरमौर की पहाड़ियों के 'आदिबद्री' नामक स्थान से प्रारम्भ इस यात्रा ने हरियाणा, पंजाब, राजस्थान और गुजरात के प्रवाह–मार्गों से होकर प्रभासपाटण पर यात्रा सम्पन्न की थी। मोरेश्वर नीलकण्ठ (मोरोपन्त) पिंगले के और पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर के संयुक्त संचालन में लगभग चार हजार किलोमीटर यात्रा–प्रदक्षिणा पूर्ण की गयी। शास्त्राज्ञ, विज्ञानवेत्ता, लोककला अभ्यासक, पुरातत्वविद्, स्वयंसेवी संस्थाओं के सहयोग से यह शोध–यात्रा सफल हुई। प्राचीन सरस्वती नदी का पुराप्रवाह मार्ग ढूँढ निकाला गया। इतना ही नहीं, विश्व के विद्वानों द्वारा भारतीय सभ्यता का नाम 'सरस्वती–सिंधु सभ्यता' कहना उचित स्वीकार गया। मोरोपन्त और डॉ. वाकणकर हमारे बीच नहीं है। सरस्वती–शोध हेतु ये दोनों महापुरुष भारतीय जनमानस में अमर रहेंगे।

मोरोपन्त में महान संगठन–कौशल था और डॉ. वाकणकर में महान सौन्दर्य–दृष्टि। यह शोधकार्य शोध–प्रक्रिया क्षेत्र में पथ–प्रदर्शन कार्य के रूप में सदा स्मरण किया जायेगा। पुरोवाक् के इस प्रवेशांक में, हमनें सरस्वती सभ्यता के विभिन्न आयामों पर चर्चा करने का प्रयास किया है। इसके ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक पहलुओं से लेकर इसकी समकालीन प्रासंगिकता तक। हमें उम्मीद है कि यह विशेषांक न केवल हमारे अतीत की गहराई को समझने में मदद करेगा, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए प्रेरणा भी प्रदान करेगा। आइये, सरस्वती की महान धारा को फिर से अपने विचारों और कर्मों में प्रवाहित करें। वीर भारत न्यास द्वारा प्रकाशित रिसर्च जर्नल पुरोवाक् भारतीय संस्कृति, इतिहास और विशेष रूप से सरस्वती सभ्यता पर केंद्रित एक महत्वपूर्ण प्रकाशन है। यह रिसर्च भारतीय सभ्यता की प्राचीनता, ज्ञान–विज्ञान और सांस्कृतिक धरोहर को प्रामाणिक दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत करती है। यह सरस्वती सभ्यता पर केंद्रित है, जो प्राचीन भारत की वैज्ञानिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों का प्रतिनिधित्व करती है। इसमें ऐसे शोध लेख और सामग्री है, जो पाठकों को सरस्वती नदी, वैदिक संस्कृति, पुरातात्विक खोजों और प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली से परिचित कराती है। पुरोवाक् इतिहास, संस्कृति और भारतीयता में रुचि रखने वाले विद्यार्थियों, शोधकर्ताओं और सामान्य पाठकों को न केवल भारतीय सभ्यता के बारे में गहन जानकारी प्रदान करती है, बल्कि पाठकों में गर्व और आत्मबोध का भाव भी जगाती है। पुरोवाक् भारतीय इतिहास और संस्कृति के पुनर्जागरण में एक महत्वपूर्ण प्रयास है। यह सरस्वती सभ्यता पर एक नई दृष्टि प्रस्तुत करती है और भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रति लोगों की जिज्ञासा को बढ़ाती है। इसकी सामग्री गहन, प्रामाणिक और प्रेरणादायक है, जो लोग भारत के प्राचीन गौरव और सांस्कृतिक विरासत को समझना चाहते हैं, उनके लिए पुरोवाक् का अध्ययन अनिवार्य है।

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ, स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन के लिए
बिड़ला भवन, देवास रोड, उज्जैन–456010 से प्रसारित. सम्पादक : श्रीराम तिवारी, समन्वयक : राजेश्वर त्रिवेदी.
आलेख सेवा निःशुल्क वितरण के लिए. फोन: 0734-2521499, 0755-2660407 Email:mvspujjain@gmail.com, vikramadityashodhpeeth@gmail.com